दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

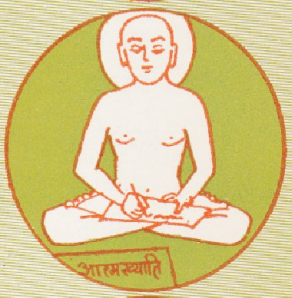

मद्दउ माण कसायविहंडणु।
मद्दउ पंचेदिय मण दंडणु॥
मद्दवेण बहु विणय पवट्टइ।
मद्दवेण जण वइरुउ हट्टइ॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [३७८]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१	रे भाई आतम अनुभव कीजै
२	उस गृहस्थाश्रम को धिक्कार है
३	संपादकीय : उत्तम मार्दव
४	समयसार प्रवचन
५	एक आत्मा का ही ध्यान कर...
६	परमात्मप्रकाश प्रवचन
७	द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८	नयों के कथन का मूल प्रयोजन
९	ज्ञान-गोष्ठी
१०	समाचार दर्शन
११	पाठकों के पत्र
१२	प्रबंध संपादक की कलम से

यह उत्तम मार्दव धर्म मान कषाय का खंडन करनेवाला है, पंचेन्द्रियों तथा मन के स्वैर-विलास को दंडित करनेवाला है। मार्दव विनय की ओर प्रवृत्त करता है। इसके पालन से मनुष्य वैर-विरोध का शमन करने में समर्थ होता है। **- महाकवि रइधू**

(मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है)

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७९] अंक : ७

रे माई आतम अनुभव कीजै॥ रे०॥
या सम सुहित न साधक दूजौ,
ज्ञान द्रगन लखि लीजै॥ रे०॥
पुदगल जीव अनादि संजोगी,
ज्यों तिल तेल पतीजै।
होत जुदौ तौ मिलौ कहाँ है,
लखि सब प्रति दिठि दीजै॥ रे०॥
जीव चेतनामय अविनाशी,
पुदगल जड़ मिलि छीजै।
रागादिक परनमन भूल निज,
गये साम्य रंग भीजै॥ रे०॥
निरउपाधि सरवारथ पूरन,
आनंद उदधि मुनीजै।
'छत्त' दास गुन रस स्वाद तैं,
उदभव सुखरस पीजै॥ रे०॥

उस गृहस्थाश्रम को धिक्कार है

परमपूज्य आचार्य पद्मनन्दिदेव द्वारा विरचित 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' पर पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन अनेक बार हो चुके हैं। वे आठ-दश वर्ष पूर्व 'श्रावकधर्मप्रकाश' नाम से गुजराती व हिन्दी में प्रकाशित भी हो चुके हैं। उक्त ग्रंथ में से कुछ महत्त्वपूर्ण अंश पृष्ठ संख्या सहित यहाँ प्रस्तुत हैं :—

- भगवान के विरह में उनकी प्रतिमा को साक्षात् भगवान के समान समझकर श्रावक हमेशा दर्शन-पूजन करे। पृष्ठ ३४
- जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान को भक्ति से नहीं देखता (दर्शन नहीं करता) तथा उनकी पूजा-स्तुति नहीं करता, उसका जीवन निष्फल है और उसके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है। पृष्ठ ३५
- देव-पूजा, गुरु-सेवा और शास्त्र-स्वाध्याय ये श्रावक के हमेशा के कर्तव्य हैं। जिस घर में देव-गुरु-शास्त्र की उपासना नहीं होती, वह तो घर नहीं परंतु जेलखाना है। पृष्ठ ३६
- जो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को नहीं पहिचाने, उनकी उपासना नहीं करे, वह तो व्यवहार से भी श्रावक नहीं कहलाता। पृष्ठ ३७
- प्रातःकाल भगवान के दर्शन द्वारा अपने इष्ट-ध्येय को स्मरण करके बाद में ही श्रावक दूसरी प्रवृत्ति करे। पृष्ठ १०३
- जो गृहस्थ हमेशा परम भक्ति से जिननाथ के दर्शन नहीं करता, अर्चन नहीं करता और स्तवन नहीं करता; उसीप्रकार परम भक्ति से मुनिराजों को दान नहीं देता, उसका गृहस्थाश्रम पद पत्थर की नाव के समान है। पृष्ठ १०४
- जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे, ये तेरा जैनपना कैसा ? जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है - वह घर धन्य है; और इसके बिना घर तो श्मशान तुल्य है। पृष्ठ १०६

❀ वीतराग-प्रतिमा के दर्शन-पूजन का जो निषेध करे, उसकी तो बात ही क्या करना ? इसमें तो जिनमार्ग की अति विराधना है। पृष्ठ १०७

❀ जिनबिम्ब-दर्शन को तो सम्यग्दर्शन का निमित्त गिना है, उस निमित्त का भी जो निषेध करे, उसे सम्यग्दर्शन का भी ज्ञान नहीं। पृष्ठ १०७

❀ व्यवहार को एकांत हेय कहकर कोई जीव देवदर्शन-पूजन-भक्ति, मुनि आदि धर्मात्मा का बहुमान, स्वाध्याय-व्रतादि को छोड़ दे और अशुभ को सेवे, वह तो स्वच्छन्दी और पापी है। शुद्धात्मा के अनुभव में लीनता होते ही ये सब व्यवहार छूट जाते हैं, परंतु इसके पूर्व तो भूमिका के अनुसार व्यवहार के परिणाम होते ही हैं। पृष्ठ १४०

परस्त्री का भोग तो महापाप है

''जब स्वस्त्री का भोग भी पाप है, तब परस्त्री के भोग में पाप का अभाव कैसे हो सकता है ? वह तो महापाप है।'' उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे, जब सायंकालीन चर्चा में उनसे कहा गया कि कुछ लोग बड़े जोरों से प्रचार कर रहे हैं कि सोनगढ़ परस्त्री सेवन में पाप नहीं मानता। बात को आगे बढ़ाते हुए स्वामीजी ने कहा - इसका तो बहुत स्पष्टीकरण हो गया है। फिर भी लोग कहते हैं तो हम क्या करें ? भाई ! जरा विचार तो करो, पुण्य को भी मुक्तिमार्ग में हेय कहनेवाले परस्त्री सेवन जैसे महापाप को उपादेय कैसे कहेंगे ?

हम तो हजारों बार विषय-कषाय को महापाप कहते हैं। कोई कुछ कहे उसके लिये हम क्या कर सकते हैं ? परस्त्री सेवन तो महापाप ही है, नरक-निगोद का कारण है। इससे अधिक हम क्या कहें ?

-सम्पादक

प्रतिदिन एक घंटा सामूहिक स्वाध्याय अवश्य कीजिए।

सम्पादकीय

उत्तम मार्दव | एक चिंतन

[गतांक से आगे]

जैसा हो, वैसा अपने को मानने का नाम मान नहीं है, क्योंकि उसका नाम तो सत्य श्रद्धान, सत्य ज्ञान है। बल्कि जैसा है नहीं, वैसा मानने से, तथा जैसा है नहीं, वैसा मानकर अभिमान या दीनता करने से मान होता है, मार्दव धर्म खंडित होता है। यदि मात्र अपने को ज्ञानी मानने से मान होता हो, तो फिर ज्ञानी को भी ज्ञानमद मानना होगा क्योंकि वह भी तो अपने को ज्ञानी मानता है। केवलज्ञानी भी अपने को केवलज्ञानी मानते - जानते हैं, तो क्या वे भी मानी हैं ? नहीं, कदापि नहीं।

ज्ञानमद केवलज्ञानी को नहीं होता, क्षयोपशमज्ञानवालों को होता है। क्षयोपशम -ज्ञानवालों में भी ज्ञानमद सम्यग्ज्ञानी को नहीं, मिथ्याज्ञानी को होता है। मिथ्याज्ञानी को अज्ञानी भी कहा जाता है।

संयोग को संयोगरूप जानने से भी मान नहीं होता, क्योंकि सम्यग्ज्ञानी चक्रवर्ती अपने को चक्रवर्ती जानता ही है, मानता भी है; किंतु साथ में यह भी जानता है कि यह सब संयोग है, मैं तो इनसे भिन्न निराला तत्त्व हूँ। यही कारण है कि उसके अनंतानुबंधी का मान नहीं होता। यद्यपि कमजोरी के कारण अप्रत्याख्यानादि का मान रहता है, तथापि मान के साथ एकत्वबुद्धि का अभाव है, अतः उसके आंशिकरूप से मार्दव धर्म विद्यमान है।

अनंतानुबंधी मान का मूल कारण शरीरादि परपदार्थ एवं अपनी विकारी और अल्प विकसित अवस्थाओं में एकत्वबुद्धि है। मुख्यतः हम इसे शरीर के साथ एकत्वबुद्धि के आधार पर समझ सकते हैं - क्योंकि रूपमद, कुलमद, जातिमद, बलादिमद शरीर से ही संबंध रखते हैं। रूपमद शरीर की कुरूपता और सुरूपता के आश्रय से ही होता है। इसीप्रकार बलमद भी

शरीर के बल से संबंधित है तथा जाति और कुल का निर्णय भी जन्म से संबंध रखने के कारण शरीर से ही जुड़ जाता है।

जो व्यक्ति शरीर को ही अपने से भिन्न पदार्थ मानता है, जानता है, उसमें अपनत्व भी नहीं रखता; वह शरीर के सुंदर होने से अपने को सुंदर कैसे मान सकता है ? इसीप्रकार उसके कुरूप होने से भी अपने को कुरूप कैसे मानेगा ?

दूसरी बात यह भी तो है कि ज्ञानी इनकी क्षणभंगुरता से भलीभाँति परिचित होता है। अत: इनके आश्रय से उसे मान कैसे हो सकता है ? शरीरादि संयोग पल-पल में विकृत और विनष्ट होनेवाले हैं। क्या पता अभी सुंदर दिखनेवाला शरीर कब असुंदर हो जावे। ऐश्वर्य का भी क्या भरोसा ? प्रात: के श्रीमंत को सायं होने के पहले श्रीविहीन होते देखा जा सकता है। अपनी भुजाओं से मोटर रोक देनेवाले गामा पहलवान के बाजुओं में मरते समय मक्खी उड़ाने की भी शक्ति न रही थी। क्या कोई दावे के साथ कह सकता है कि जो शक्ति, जो सौन्दर्य और जो संपत्ति आज मेरे पास है, वह कल भी रहेगी ? काया और माया को बिखरते क्या देर लगती है ? ऐसी स्थिति में मान क्या किया जाये और किस पर किया जाये ?

इसी प्रकार जाति, कुलादि पर भी घटित कर लेना चाहिये।

ऐश्वर्यमद बाह्य पदार्थों से संबंध रखता है तथा ज्ञानमद आत्मा की अल्प विकसित अवस्था के आश्रय से होनेवाला मद है। जिसे अपनी पूर्ण विकसित पर्याय केवलज्ञान का पता है, उसे क्षयोपशमरूप अल्प-ज्ञान का अभिमान कैसे हो सकता है ? कहाँ भगवान का अनंत ज्ञान और कहाँ अपना उसका अनंतवाँ भाग ज्ञान, क्या करना उसका अभिमान ? और क्षयोपशम ज्ञान क्षणभंगुर भी तो है। अच्छा भला पढ़ा-लिखा आदमी क्षण भर में पागल भी तो हो सकता है ?

धन-जन-तन आदि संयोगों के आधार पर किया गया मान अंतत: खंडित होना ही है क्योंकि संयोग का वियोग निश्चित है, अत: संयोग का मान करनेवाले का मान खंडित होना भी निश्चित है।

मार्दव धर्म की प्राप्ति के लिये देहादि में से एकत्वबुद्धि तोड़नी होगी। देहादि में एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व के कारण होती है, अत: सर्वप्रथम मिथ्यात्व का ही अभाव करना होगा,

तभी उत्तमक्षमामार्दवादि धर्म प्रकट होंगे, अन्य कोई मार्ग नहीं है। मिथ्यात्व का अभाव आत्मदर्शन से होता है; अत: आत्मदर्शन ही एकमात्र कर्तव्य है, उत्तमक्षमामार्दवादि धर्म अर्थात् सुख-शांति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है।

देहादि में परबुद्धि के साथ-साथ आत्मा में उत्पन्न होनेवाली क्रोधमानादि कषायों में हेयबुद्धि भी होनी चाहिये। उनमें हेयबुद्धि हुए बिना उनका अभाव होना संभव नहीं है। यद्यपि अज्ञानी भी कहता तो यही है - मान खोटी चीज़ है, इसे छोड़ना चाहिये, तथापि उसके अंतर में मानादि के प्रति उपादेयबुद्धि बनी रहती है। हेय तो शास्त्रों में लिखा है, इसलिये कहता है। मन से तो वह मान-सम्मान चाहता ही है, अत: मान रखने के अनेक रास्ते निकालता है। कहता है - मान नहीं, पर आदमी में स्वाभिमान तो होना ही चाहिये। स्वाभिमान किसे कहते हैं, इसकी तो उसे कुछ खबर ही नहीं है; मान के ही किसी अंश को स्वाभिमान मान लेता है।

मान लीजिए आपने मुझे प्रवचन के लिये बुलाया, पर जो स्टेज बनाया तथा प्रवचन सुनने के लिये जितनी जनता जुड़ी, वह स्टेज व उतनी जनता मुझे अपनी विद्वत्ता की तुलना में अपर्याप्त लगे तथा मैं कहने लगूँ कि इतनी-सी स्टेज, इस पर एक चौकी और लगाओ। इतने बड़े विद्वान के लिये इतनी नीची स्टेज बनाते शर्म नहीं आयी और जनता भी इतनी सी।

आप कहेंगे पंडितजी मानी हैं और मैं कहूँगा कि यह मान नहीं, स्वाभिमान है। विद्वान को मानी नहीं पर स्वाभिमानी तो होना ही चाहिये, उसकी इज्जत तो होनी ही चाहिये।

समझ में नहीं आता कि इसमें बेइज्जती की किसने ? क्या कम जनता एवं नीचे स्टेज से किसी की बेइज्जती हो जाती है ? अंततोगत्वा मान और स्वाभिमान के बीच विभाजन रेखा तो खींचनी ही होगी - कि कहाँ तक वह स्वाभिमान कहलाएगा और कहाँ से मान। आखिर में होता यही है कि लोग उसे मानी कहते रहते हैं और मान करनेवाला उसी को स्वाभिमान नाम देता रहता है।

और भी इनेक प्रसंगों पर इसप्रकार के दृश्य देखे जा सकते हैं।

स्वाभिमान शब्द स्व+अभिमान से बना है। स्व शब्द निज का वाची है, उसमें स्टेज और जनता कहाँ से आ जाते हैं। वस्तुत: तो अपनी आत्मा की पूर्ण शक्तियों को पहिचान कर उनके

आश्रय से जगत के सामने दीन न होना ही स्वाभिमान है। स्वाभिमान का सही स्वरूप न पहिचान कर स्वाभिमान के नाम पर अज्ञानी मान ही करता रहता है।

सन्मान के नाम से ही मान लिया-दिया जाता है। कहते हैं कि यह सत् मान है। हम तो समझते हैं कि मान तो असत् ही होता है पर लोगों ने उसके भी दो भेद कर डाले हैं - सत्+मान=सम्मान और असत्+मान=असम्मान। यदि मान भी सत् होगा तो फिर असत् क्या होगा?

लोग कहते हैं सन्मान तो दूसरों ने दिया है, उससे हम मानी कैसे हो गये? पर भाईसाहब! लिया तो आपने है। आचार्यों ने चारों गतियों में चार कषायों की मुख्यता बताते हुए मनुष्य गति में मान की मुख्यता बतायी है। आदमी सब कुछ छोड़ सकता है - घर-बार, स्त्री-पुत्रादि, यहाँ तक कि तन के वस्त्र भी, पर मान छोड़ना बहुत कठिन है। आप कहेंगे कैसी बातें करते हो? पद की मर्यादा तो रखनी ही पड़ती है। पर भाई! समस्त पदों के त्याग का नाम साधु पद है, यह बात क्यों भूल जाते हो?

रावण मान के कारण ही नरक गया है। यद्यपि वह सीताजी को हर कर ले गया था, तथापि उसने उन्हें हाथ नहीं लगाया। अंत में तो उसने सीताजी को ससम्मान राम को वापस करने का भी निश्चय कर लिया था, किंतु उसने सोचा कि बिना राम से लड़े और बिना जीते देने पर मान भंग हो जायेगा। दुनिया कहेगी कि डरकर सीता वापस कर दी है। अतः उसने संकल्प किया कि पहिले राम को जीतूँगा, फिर सीता को ससम्मान वापस कर दूँगा।

देखो! सीता वापस देना स्वीकार, पर जीतकर; हारकर नहीं। सवाल सीता का नहीं; मूँछ का था, मान का था। मूँछ के सवाल के कारण सैकड़ों घर बर्बाद होते सहज ही देखे जा सकते हैं। मनुष्यगति में अधिकतर झगड़े मान के खातिर ही होते हैं। न्यायालयों के आस-पास मूँछों पर ताव देते लोग सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि आप कैसी बातें करते हैं? मान-सम्मान की चाह तो ज्ञानी के भी हो सकती है, होती भी है। देखने पर पुराणों में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिल जावेंगे।

हाँ! हाँ!! क्यों नहीं, अवश्य मिल जावेंगे। पर मान की चाह अलग बात है और मानादि

कषायों में उपादेयबुद्धि अलग बात है। मानादि कषायों में उपादेयबुद्धि मिथ्यात्व भाव है, उसके रहते तो उत्तमामर्दवादि धर्म प्रकट ही नहीं हो सकते। मान की चाह और मान कषाय की उपस्थिति में आंशिकरूप से मार्दवादि धर्म प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि मान की चाह और मान कषाय की आंशिक उपस्थिति चारित्रमोह का दोष है, वह क्रमशः ही जायेगा, एक साथ नहीं।

सम्यग्दृष्टि के यद्यपि अनंतानुबंधी मान चला गया है, तथापि अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन मान तो विद्यमान है, उनका प्रकटरूप तो ज्ञानी के भी दिखायी देगा ही। इसीप्रकार अणुव्रती के प्रत्याख्यान और संज्वलन संबंधी तथा महाव्रती मुनिराजों के भी संज्वलन संबंधी मानादि की उपस्थिति रहेगी ही। मानादि कषायें छूटेंगी तो भूमिकानुसार हीं, पर उनमें उपादेयबुद्धि, उन्हें अच्छा मानना तो छूटना ही चाहिए; इसके बिना तो धर्म का आरंभ भी नहीं हो सकता।

आश्चर्य की बात तो यह है कि हम उन्हें उपयोगी और उपादेय मानने लगे हैं। कहते हैं कि गृहस्थी थोड़ा क्रोध, मान आदि तो होना ही चाहिये, अन्यथा काम ही न चलेगा। यदि थोड़ा-बहुत भी क्रोध नहीं रहा तो फिर बच्चे भी कहना न मानेंगे। सारा अनुशासन-प्रशासन समाप्त हो जायेगा। थोड़ा स्वभाव तेज हो तो सब काम ठीक होता है, समय पर होता है। इसीप्रकार यदि हम बिलकुल भी मान न रखेंगे तो फिर कोई भटे के भाव भी नहीं पूछेगा। आन-बान-शान के लिये थोड़ा-सा मान भी जरूरी है।

अज्ञानी समझता है - अनुशासन-प्रशासन और मान-सम्मान क्रोध-मान के द्वारा होते हैं, जबकि इनका क्रोध-मान के साथ दूर का भी संबंध नहीं है।

एक बाबाजी थे। उन्हें खाँसी उठा करती थी। उनसे कहा गया कि खाँसी का इलाल करा लीजिए, क्योंकि कहावत है कि 'लड़ाई की जड़ हाँसी और रोग की जड़ खाँसी।' वे कहने लगे - भाई, भरे-पूरे घर में इतनी खाँसी तो चाहिये। क्यों ? ऐसा पूछने पर कहने लगे - तुम समझते तो हो नहीं। बहू-बेटियों वाला बड़ा घर है। घर में खाँसते-खखारते जाओ तो सब सावधान हो जाते हैं, इसमें उनकी और हमारी दोनों की इज्जत बनी रहती है।

जब उनसे कहा गया कि खाँसी का तो इलाज करवा लीजिए, बहू-बेटियों के लिये

नकली खाँस लिया करना, तब तुनक कर बोले - नकली क्यों खाँसू जब असली ही है तो। हम नकली काम नहीं करते। नकली वे करें जिनके असली न हो।

आवश्यकतावश खाँसना-खखारना अलग बात है, और खाँसी को ही उपयोगी और उपादेय मानना अलग बात। जिसने खाँसी को ही उपयोगी और उपादेय मान लिया है, उसे कालांतर में निश्चितरूप से तपेदिक होनेवाला है। इसीप्रकार मानादि की चाह या मानादि का आंशिकरूप से होना अलग बात है और उन्हें उपयोगी और उपादेय मानना अलग बात। उपादेय माननेवाले को धर्म प्रकट होना भी संभव नहीं है।

मानादि कषायें भूमिकानुसार क्रमशः छूटती हैं, पर उनमें उपादेयबुद्धि एकसाथ ही छूट जाती है। इनमें उपादेयबुद्धि छूटे बिना धर्म का आरंभ ही नहीं होता।

तो क्या अंत में यही निष्कर्ष रहा कि क्रोध-मानादि कषायें नहीं करना चाहिये, इन्हें छोड़ देना चाहिये? नहीं, कहा था न कि क्रोध, मान छोड़े नहीं जाते हैं, छूट जाते हैं। बहुत से लोग मुझसे कहते हैं कि आप बीमार बहुत पड़ते हैं, जरा कम पड़ा कीजिए न। मैं पूछता हूँ कि क्या मैं बीमार सोच-समझकर पड़ता हूँ, जो कम पड़ा करूँ, अधिक नहीं। अरे भाई! मेरा बस चले तो मैं बीमार पड़ूं ही नहीं।

इसीप्रकार क्या कोई क्रोधमानादि कषायें सोच-समझकर करता है। अरे! उसका वश चले तो वह कषाय करे ही नहीं। क्योंकि प्रत्येक समझदार प्राणी कषायों को बुरा समझता है और यह भी चाहता है कि मैं कषाय करूँ ही नहीं, पर उसके चाहने से होता क्या है? क्रोध-मानादि कषायें हो ही जाती हैं, हो क्या जाती हैं, सदा बनी ही रहती हैं, कभी कम, कभी अधिक; कभी मंद, कभी तीव्र। अनादि काल से एक भी अज्ञानी आत्मा आज तक कषाय किये बिना एक समय भी नहीं रहा। यदि एक बार भी, एक समय को भी कषाय भाव का पूर्णतः अभाव हो जावे तो फिर कषाय हो ही नहीं सकती।

अब यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर मान क्यों उत्पन्न होता है और मिटे कैसे? इसकी उत्पत्ति का मूल कारण क्या है और इसका अभाव कैसे किया जाये?

जब तक यह आत्मा परपदार्थों को अपना मानता रहेगा, तब तक अनंतानुबंधी मान की

उत्पत्ति होती ही रहेगी। यहाँ ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि परपदार्थ की उपस्थितिमात्र मान का कारण नहीं है। तिजोरी में लाखों रुपया पड़ा रहता है, पर तिजोरी को मान नहीं होता, उन्हें संभालनेवाले मुनीम को भी मान नहीं होता; पर उससे दूर बैठे सेठ को होता है; क्योंकि सेठ उन्हें अपना मानता है।

सेठ अपने को कपड़ा-मिल का मालिक समझता है। कपड़ा-मिल छूटने से मान नहीं छूटेगा, क्योंकि राष्ट्रीयकरण हो जाने पर मिल तो छूट जायेगा, पर सेठ को मान की जगह दीनता हो जायेगी। अभी तक अपने को मिल का मालिक समझकर मान करता था, अब उसके अभाव में अपने को दीन अनुभव करेगा।

मिल छूटने से नहीं, पर छोड़ने से तो मान छूट जायेगा? तब भी नहीं, क्योंकि छोड़ने से छोड़ने का मान हो जायेगा, मान छोड़ने के लिये उसे अपना मानना छोड़ना होगा। मान का आधार 'पर' नहीं, पर को अपना मानना है।

जो पर को अपना माने, उसे मुख्यतः मान होता है। अतः मान छोड़ने के लिये पर को अपना मानना छोड़ना होगा। पर को अपना मानना छोड़ने का अर्थ यह है कि निज को निज और पर को पर जानना होगा, दोनों को भिन्न-भिन्न स्वतंत्र सत्तायुक्त पदार्थ मानना ही पर को अपना मानना छोड़ना है, ममत्त्वबुद्धि छोड़ना है।

पर से ममत्वबुद्धि छोड़नी है और रागादि भावों में उपादेयबुद्धि छोड़नी है। इनके छूट जाने पर मुख्यतः मान उत्पन्न ही न होगा, विशेषकर अनंतानुबंधी मान तो उत्पन्न ही न होगा। चारित्रदोष और कमजोरी के कारण अप्रत्याख्यानादि मान कुछ काल तक रहेंगे, पर वे भी इसी ज्ञान-श्रद्धान के बल पर होनेवाली आत्मलीनता से क्रमशः क्षीण होते जावेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा कि मार्दवस्वभावी-आत्मा पर्याय में भी पूर्ण मार्दवधर्म से युक्त हो जायेगा, मानादि का लेश भी न रहेगा।

वह दिन सबको शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त हो, इस पवित्र भावना के साथ मार्दव धर्म की चर्चा से विराम लेता हूँ। ●●

सुलभ और असुलभ

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की चौथी गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामीजी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है –

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥

काम-भोग संबंधी बंध कथा तो सर्व लोक ने सुनी है, उसका परिचय प्राप्त किया है और अनुभव भी किया है, इसलिए वह सबको सुलभ है; किंतु लोक ने पर से भिन्न और एकत्व को प्राप्त आत्मा की बात न सुनी है, न वह उससे परिचित है और न उसके अनुभव में ही आयी है, अतः असुलभ है।

इस समस्त जीवलोक अर्थात् निगोद से लेकर अज्ञानी पंचेन्द्रिय तक समस्त जीवों को, काम-भोग संबंधी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यंत अनिष्ट करनेवाली होने पर भी अनंत बार सुनने से परिचय में और अनुभव में आयी है। अनादि से यह आत्मा स्वभाव को छोड़कर राग का ही कर्ता-भोक्ता रहा है, वही आदत पड़ी है। इच्छा और इच्छा को भोगने संबंधी बंध-कथा संबंधी विकल्प अनंत बार श्रवण, परिचय और अनुभव में आये हैं – अतः बंध-कथा सुलभ है; परंतु राग से भिन्न निर्मल दशा द्वारा त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करते हैं – यह बात कभी नहीं सुनी।

सुनी नहीं अर्थात् – ऐसे तो अनंत बार भगवान के समवसरण में जाकर यह बात सुनी है, परंतु पर्यायदृष्टि छोड़कर भगवान ने जो निज कारणपरमात्मा की दृष्टि करने को कहा – वह कभी नहीं की; अतः सुना ही नहीं, ऐसा कहा है। पर से भिन्न आत्मा का एकत्व होना कभी सुना नहीं, अनुभव नहीं किया, अतः वह एकत्व सुलभ नहीं है।

जो जीव अनादि से निगोद में ही है और अनंत काल तक वहीं रहेगा, उसने भी काम-

भोग संबंधी बंध-कथा अनंत बार सुनी है। कैसे ? मिथ्यात्व और कषायमय शुभाशुभभावरूप परिणमन करना ही बंध-कथा का श्रवण, परिचय, अनुभव इत्यादि है। निगोद के जीव को भी काम-भोग का मूल ऐसे रागादिभावरूप परिणमन और उसका वेदन अनादिकाल से है, अतः उसने भी अनंत बार काम-भोग संबंधी विकथा सुनी है।

मिथ्यादृष्टि मुनि भी समवसरण में जाकर भगवान की वाणी सुने तो भी उसने बंध-कथा ही सुनी है। समयसार पढ़कर भी - एक पदार्थ के कारण अन्य पदार्थ में कार्य होता है तथा कर्म के कारण उपकार होता है - ऐसा अभिप्राय पुष्ट करे तो उसने बंध-कथा ही पढ़ी है, समयसार नहीं। पर से पृथक् हूँ, यह बात पढ़ी ही नहीं। समयसार में कथन आता है कि 'आत्मा विकार का स्वामी नहीं, विकार का स्वामी तो कर्म है' यह द्रव्यदृष्टि का कथन है। स्वयं पर्याय में दोष करता है, उस पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर द्रव्यदृष्टि कराने हेतु उपरोक्त कथन है। कथन का अभिप्राय न समझे तो विपरीत अर्थ करता है।

कैसा है जीवलोक ? जैसे चक्की के दो पाटों के बीच दाना पिसता है; उसीप्रकार यह जीवलोक संसाररूपी चक्र के मध्य में दुःख से पिस रहा है। निरंतर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनंत परावर्तनों में भ्रमण कर रहा है। चौदहवें गुणस्थानवाला जीव भी संसार में है परंतु किनारे में है। सम्यग्दृष्टि जीव भी संसार के अंत में है। मिथ्यादृष्टि जीव संसार के मध्य में स्थित है, त्रिकाली आनंद का नाथ ऐसे निज आत्मा की दृष्टि बिना अनंत बार कर्म-नोकर्म योग्य सर्व पुद्गलद्रव्यों के ग्रहण-त्यागरूप द्रव्यपरावर्तन में, लोकाकाश की श्रेणीरूप क्षेत्र-प्रदेशों में, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप काल-चक्र के संयोगों में, शुभाशुभभावों में, चौरासी लाख योनियों के भवों में जन्म-मरण करके अनंत-अनंत दुःखी हुआ।

.....और कैसा है जीवलोक ? समस्त को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत, जिसके पास बैल की भाँति भार वहन कराता है। शुभाशुभभाव ही मेरा कार्य है, ऐसा मानकर यह छोड़ा और यह ग्रहण किया, ऐसा मिथ्या अभिप्रायरूपी महाभूत समस्त विश्व को लगा है। भगवान आनंद का नाथ स्वयं है, उसे न देखकर परसन्मुख हो जानवर के समान भार वहन करता है। संसार के ये कार्य लूँ - ऐसा करने से धन बढ़ेगा, यह करने से कीर्ति बढ़ेगी; ऐसा करते-करते सारा जीवन पर का कार्य करूँ-करूँ का बोझा ढोता रहता है। भगवान

अभेदस्वरूप शुद्ध चिदानंद का नाथ है, उसमें एकत्व की स्थापना के बदले राग और विकल्प की वृत्तियों में ही एकाकार होकर संसारचक्र में परिभ्रमण करके दु:खी हो रहा है।

समस्त जीवलोक को मिथ्या अभिप्राय द्वारा भ्रमण उत्पन्न होने से तृष्णारूपी रोग का दाह प्रकट हुआ है। अनुकूल संयोग हों तो ठीक रहेगा, ऐसा मानना तृष्णा है। वृत्तियाँ उठा ही करती हैं कि 'यह करूँ-यह करूँ'। अतीन्द्रिय स्वभाव की तरफ झुकाव न होने से पंच इंद्रियों के विषयों के संग्रह की दाह में जल रहा है। जैसे गंभीर रोग होने पर बहुत दाह होती है, उसीप्रकार तृष्णारूपी दावानल में विषयों को प्राप्त करके शीघ्र ही भोग लूँ - ऐसी चाह की दाह में समस्त जीवलोक जल रहा है।

मेरे उपदेश से लाखों जीवों को धर्मलाभ हुआ, ऐसा माननेवाला तृष्णा में जल रहा है। अन्य जीव समझें या न समझें, उसका लाभ-अलाभ उन्हीं को होगा; अन्य जीवों को नहीं। स्वयं को स्वयं से ही लाभ-अलाभ है, ऐसी स्वतंत्रता का जिसे भान नहीं, वह दूसरों से संतुष्ट होना चाहता है।

परजीव समझें, तभी मेरा कल्याण होगा - ऐसा नियम हो तो समझनेवाले जीवों की खोज में रुकना पड़ेगा। मेरे उपदेश से बहुत जीव समझ गये या कोई नहीं समझा - ऐसी मान्यता मोहरूपी भूत है। श्रोता समझे या न समझे या उल्टा समझे, उसका फल वक्ता को नहीं लगता। बहुत जीवों की सेवा करूँ तो तर जाऊँगा, जन-सेवा, वह प्रभु-सेवा है।-इसप्रकार तृष्णा से आकुल-व्याकुल होकर मृगजल के समान विषय-समूह को घेरा डाल रखा है। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि शांत नहीं होती अपितु और ज्यादा प्रज्वलित हो जाती है; उसीप्रकार तृष्णारूपी अग्नि विषयों की प्राप्ति से तीव्र होती जाती है। अत: पाँचों इंद्रियों के विषयों को एकसाथ भोग लूँ, ऐसी आकुलता से जल रहा है।

विषय-भोग में यह जीवलोक परस्पर आचार्यत्व करता है अर्थात् परस्पर एक-दूसरे को वैसा करने की प्रेरणा और शिक्षा देते हैं। परस्पर बात करते हैं कि निमित्त बिना कार्य नहीं होता। अत: निमित्त तो मिलाना चाहिए न ? पुण्य करते-करते धर्म होगा। - इसप्रकार अज्ञानी जीव परद्रव्य से लाभ-हानि बताकर विपरीत श्रद्धा अंगीकार कराते हैं।

निमित्त होता तो है न, ऐसा कहते ही प्रसन्नता व्यक्त करते हैं और अंतर में एकत्वबुद्धि

पुष्ट करते हैं। मुनिराज या भगवान मोक्ष गये हों, ऐसे क्षेत्र के वातावरण से भाव निर्मल रहते हैं, घर या दुकान जाने से परिणाम बिगड़ते हैं – ऐसा मानते हैं; दूसरों से कहकर अंगीकार कराते हैं। परंतु जिसप्रकार सूखी हड्डी चबाता हुआ कुत्ता अपने गले से निकलते लहू का स्वाद लेता हुआ आनंदित होता है; उसीप्रकार विषयों का संग्रह कर भोगने की ज्वाला में आत्मशांति का घात करके उत्पन्न हुए राग को ही जीव भोगता है, विषयों को नहीं।

इसप्रकार काम-भोग-बंध की कथा अज्ञानियों को सुलभ है, परंतु निर्मल भेदज्ञान के प्रकाश में स्पष्ट भिन्न दिखाई देने योग्य सदा प्रकटरूप से अंतरंग में प्रकाशमान आत्मा के एकत्व की बात कभी रुचिपूर्वक सुनी नहीं, परिचय नहीं की, अनुभव नहीं की – अतः दुर्लभ है। अतीन्द्रिय स्वभाव में झुकने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया, कर्तृत्व की वृत्ति से पीड़ित हो रहा है। अंतर का निधान देखने को नजर ही नहीं की, राग से भिन्न होकर चैतन्य-चमत्कारस्वरूप ज्ञायक आत्मा में एकत्व कभी नहीं किया।

अंतरंग में सदा प्रकटरूप प्रकाशमान वस्तु विद्यमान है, जो भेदज्ञानरूप प्रकाश द्वारा दिखने योग्य होने पर भी, विकल्पों के समूह के साथ एक जैसी हो जाती है, अतः तिरोभूत हो गयी है, ढंक गयी है। भेदज्ञान द्वारा वस्तु को न देखकर विकल्प में एकत्वबुद्धि करता है, अतः चैतन्य-प्रकाश ढंक गया – ऐसा कहा जाता है; वस्तु तो वस्तुस्वरूप से है ही। कर्म के जोर से आत्मा नहीं दिखता, ऐसा नहीं, परंतु स्वयं राग के साथ एकाकाररूप सेवन करता है, अतः उसकी दृष्टि में आत्मा नहीं दिखता।

इसप्रकार स्वयं आत्मा को नहीं जानता और आत्मज्ञानियों की संगति न करने से अर्थात् उनके उपदेश आत्मा को जानने का प्रयत्न न करने से आत्मा का एकत्व पहले कभी नहीं सुना। एक बार धर्मात्मा का यथार्थ संग करे तो अपनी पूर्ण शक्ति को मानकर उसमें लीन होकर, वैसा हुए बिना रहे नहीं। जीव को मोक्षमार्गी धर्मात्मा मिले तो भी उनकी संगति और सेवा नहीं की। स्वतंत्र निर्दोष तत्त्व के बारे में वे क्या कहते हैं, उसका भाव अंतर में समझकर उस भाव को अंगीकार करना ही सत् की सेवा है। परंतु अपनी मान्यता को रखकर सुने तो अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप के स्वाद का अनुभव नहीं होगा।

कोई कहे कि सारे दिन आत्मा की बात, दूसरी कोई बात ही नहीं, जानकर कुछ तो करना ही पड़ेगा या नहीं ? उससे ज्ञानी कहते हैं कि पहले निर्णय तो कर कि तुम क्या कर सकते हो ? यह समझने के बाद यह प्रश्न ही नहीं रहेगा।

'असत् की मान्यता से सत् का फल नहीं आता' – ज्ञानियों की संगति भी नहीं की, ऐसा कहकर सत् समागम पर वजन दिया है। स्वयं निर्दोष सत्रूप होकर सत् को समझे तो ज्ञानी पुरुष निमित्त कहे जाते हैं। ज्ञानी की वाणी और देह को सत्समागम समझे तो उसने अचेतन का संग किया है। जैसे पिता का नाम जपे, परंतु उनकी आज्ञा न माने और उनके विरोधियों का आदर करे तो वह सुपुत्र नहीं कहा जायेगा; उसीप्रकार सर्वज्ञ वीतराग को नाम से माने, उनके नाम की माला जपे, परंतु उनकी आज्ञा क्या है ? वे परमार्थ क्या कहते हैं, यह समझे नहीं और वीतरागता विरोधी पुण्य-पाप का आदर करे, यह वीतरागता का अनुयायी नहीं है।

आत्मा का यथार्थ निश्चय करके सत्य समझा नहीं, अत: अनंत भव व्यर्थ गये, जीव ने आत्मभाव से एक भी भव नहीं बिताया। अनंत काल से अपरिचित होने से अपना परम महिमावंत स्वरूप नहीं सुना, अत: स्वयं अज्ञानी रहा। लोगों को सिनेमा-नाटक देखने की रुचि होने से वे महंगाई की भी परवाह नहीं करते। जिसकी रुचि है, जीव उसका बारंबार परिचय करते हैं। 'पर' की रुचि होने से आत्मा की बात बहुत महंगी लगती है।

'आत्मा पर से भिन्न है' – ऐसा बहुत लोग कहते हैं परंतु उसका स्वरूप नहीं समझते। समझने के लिये विशेष परिचय और धैर्य चाहिये। एक बार सुनकर उसमें से कोई शब्द धारण कर ले और माने कि हमने आत्मा जान लिया तो ऐसे आत्मा ज्ञात नहीं होता।

इसप्रकार स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से, और आत्मज्ञानियों की संगति न करने से, भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं; दुर्लभ है।

एक आत्मा का ही ध्यान कर....

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के समकालीन एवं सहयोगी साधर्मी भाई ब्रह्मचारी रायमलजी ने 'चर्चा संग्रह' नामक ग्रंथ में 'मोक्ष का उपाय एकमात्र आत्मा का ध्यान ही है' – इस बात को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये वह उन्हीं के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न – आत्मा ही के ध्यान से मोक्ष होना कही सो कारण कहा ? मोक्ष तो एक वीतराग भाव सों होय है, सो वीतराग भाव कोई ही कारण कर हुआ चाहिये। एक आत्मा ही के ध्यान का कहा प्रयोजन है ? ताका उत्तर –

उत्तर – यह तर्क तैंने कही सो सत्य है। वीतराग भावों से ही मोक्ष होय है यामें तो संदेह नाहीं परंतु वीतराग भाव कारण के बिना होय नाहीं, यह नियम है।

जैसे एक लोहे का पिंड अग्नि विषें डारिये, तब वह लोहे का पिंड तप्तायमान उष्णता को प्राप्त होय है और अग्नि माँहिं ते काढ़ि फेरि अग्नि विषें ही डारिये तो त्रिकाल उष्णता को छाँड़ि शीतलता को प्राप्त होय नाहीं – और अग्नि माँहिं सों काढ़ि सूर्य के ताप विषें धारिये तो सर्व प्रकार संपूर्ण शीतल होय नाहीं किंचित् उष्णता लिये रहे ही – और यदि जल विषें गोला को क्षेपिये तो तत्काल अंतर्मुहूर्त में शीतल होय।

ऐसे ही आत्मा चिद्रूपपिंड को कषायों का कारण पुत्र–पुत्री–स्त्री–धन–शरीरादि अशुभ कारण विषें उपयोग को लगाइए तो तीव्र कषाय उत्पन्न होय और फेरि विषयभोग की सामग्री विषें उपयोग लगाइए तो त्रिकाल विषें कषाय शांत होय नाहीं, और देव–गुरु–धर्म–दान–तप–शील–संयम–त्याग–पूजा–सामायिक–दया आदि विषें परिणाम लगाइए तो मंदकषाय होय और षट्द्रव्य–नवपदार्थ–पंचास्तिकाय–सप्ततत्त्व–गुणस्थान–मार्गणा–कर्मकाण्ड का चिंतवन करै तो विशेष अत्यंत मंदकषाय होय, और आत्मा के गुण–पर्याय विषें उपयोग लगाये तो परम शुक्ललेश्या होय, बहुरि आत्मा का अभेदरूप अवलोकन करै तो सर्व प्रकार वीतराग भाव होय है। वीतराग भावों से मोक्ष होय है।

तथा और भी कहिये है – याही संसार का अनित्यपना का उपदेश कोई तीव्र–कषायी भेषधारी जिनवाणी का उपदेश दे तो अंशमात्र धर्मबुद्धि होय नाहीं, अपूठो मोह तीव्र बढ़ै – और

अव्रती श्रद्धानी वा देशव्रती वा सकलव्रती वा ऋद्धिधारी मुनि वा सामान्यकेवली वा तीर्थंकरकेवली के मुखसों उपदेश सुनै तो अनुक्रम सों विशेष अधिक ज्ञानवैराग्य भावों की विशुद्धता होय है, सोई गोमट्टसारजी विषें कहा है। केवली व श्रुतकेवली का चरणां के निकट ही मनुष्य के क्षायिक सम्यक्त्व वा तीर्थंकर प्रकृति का बंध की प्राप्ति होय है। अत्यंत मोह मंद होय, तब यह कार्य सिद्ध होय। सो ऐसी परिणामों की विशुद्धता और स्थानक विषें होय नाहीं – तासों चिद्रूप की ऐसी अद्भुतदशा सुंदराकार तेज प्रभापनें लिये वीतराग ज्ञानानंदमय अद्वैत दशा है ताका नाममात्र कर भी गुणों की महिमा के महाशब्द सुनिये तो अद्भुत प्रिय लागैं, अत्यंत सुख उपजै – विशेष मंदकषाय होय तो साक्षात् ध्यान किये सर्व मोह गलि जाय ही जाय। अरु मोह का गलिवा थकी वीतरागदशा उत्पन्न होय। केवलज्ञान–दर्शन संलोचन (देखना–जानना) आत्मा का ज्ञानावरणी व दरशनवरणी का नाश थकी प्रकट होय, अरु अंतराय का नाश थकी अनंतवीर्य अनंत संपूर्ण सुख उत्पन्न होय, तातें जैसा कारण मिलै, तैसा कार्य सिद्ध होय – सो यह बात सिद्ध भई कि एक आत्मा का ध्यान करि ही सिद्धि है, और प्रकार सिद्धि नाहीं – नाहीं।

तातें आत्मा का लाभ के अर्थी जे पुरुष हैं, ते आत्मा ही का स्मरण, आत्मा ही का अवलोकन श्रद्धापूर्वक (करने में) आत्मलाभ मानैं। यहाँ फेरि प्रश्न –

प्रश्न – आत्मा ही का ध्यान करना था तो केवली भगवान का किया होता – वे तो सर्वज्ञ हैं तातें वाका सा (सर्वज्ञ जैसा) अतिशय याका (इस आत्मा का) कैसे होसी – ताकूँ फेरिं समझाइए है।

उत्तर – वे (सर्वज्ञ) परद्रव्य हैं और परोक्ष हैं, यह स्वद्रव्य है और कोई प्रकार प्रत्यक्ष है और अपने ज्ञान–सुख–कषाय–निष्कासन परिणामों का भोक्ता है – अपनी निज महिमा कर विराजमान है; **तातें एक निज आत्मा का ध्यान करि ही सिद्धि है।**

जैसे लौकिक विषें भी यह देखिये है कि अपनी थोरी सी भी विभूति होय ताका तो विशेष अनुराग होय और पराये घर देव समान भी विभूति होय तो भी वाकी सों (उसकी से) प्रीति न होय, ऐसे स्व वा परवस्तु विषें अनुराग का अधिक वा हीन भाव क्रमशः होय है। तैसे ही परमात्मा का ध्यान विषें और स्वात्मा का ध्यान विषें परिणामों की विशुद्धता का भेद जानना।

तातें आचार्य कहें हैं कि हे तार्किक! तू सर्व प्रकार निजात्मा के ध्यान विषें ही बुद्धि रख। पर का ध्यान तज। तेरे आत्मलाभ तेरी आत्मा ही कै होय। यह आशीर्वाद श्री गुरु दीनों है।

स्वसंवेदन ज्ञान से आत्मा को जान

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत प्रवचन आजकल परमपूज्य मुनिराज योगीन्दुदेव के ग्रंथराज 'परमात्मप्रकाश' पर चल रहे हैं।

ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को जानने की प्रेरणा देनेवाले एवं उसे जानने का सच्चा उपाय बतानेवाले प्रथम अध्याय के दोह नं० १०७ पर हुए अत्यंत मार्मिक प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल दोहा इस प्रकार है :-

अप्पा णाणहँ गम्मु पर णाणु वियाणइ जेण।
तिण्णि वि मिल्लिवि जाणि तुहुँ अप्पा णाणें तेण॥

आत्मा नियम से ज्ञान के गोचर है, क्योंकि ज्ञान ही आत्मा को जानता है; इसलिये हे प्रभाकर भट्ट! तू धर्म, अर्थ, काम इन तीनों ही भावों को छोड़कर ज्ञान से निज आत्मा को जान।

जिज्ञासु शिष्य विनयपूर्वक गुरु से विनती करता है कि हे स्वामी! जिस ज्ञान से क्षण मात्र में आत्मा जाना जा सकता है, वह परमज्ञान मुझमें प्रकाशित कीजिये। अनंत काल में व्रत-तप आदि अनंत बार किये तो भी आत्मज्ञान नहीं हुआ, तो जिससे क्षणमात्र में आत्मज्ञान प्रकट होता है, वह ज्ञान कैसा है? शुभाशुभ विकल्पजाल में फंसकर अनंत काल व्यर्थ गया। अब मुझे तो ऐसे परम ज्ञान से प्रयोजन है कि जिससे क्षणमात्र में आत्मज्ञान हो जाये। अतः हे प्रभु! मुण्में उस परमज्ञान का प्रकाश करो। उसके उत्तर में मुनिराज योगीन्दुदेव ने उक्त दोहा कहा है।

वे कहते हैं - आत्मा नियम से स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है। ज्ञान क्रिया से आत्मा जानने में आता है, राग की क्रिया से नहीं। अतः हे शिष्य! धर्म-अर्थ-कामरूपी परभावें को दृष्टि में से छोड़कर ज्ञान से आत्मा को जान।

जिसे धर्म करना हो, सम्यग्दर्शन प्रकट करना हो, उसे पाँच इन्द्रियों के विषय की अभिलाषा तथा धन कमाने की अभिलाषारूपी पाप भाव एवं दया-दान-व्रतरूप अन्य भावों

को एक बार दृष्टि में से छोड़ना पड़ेगा।

राग होते हुए भी उसकी ममता छोड़। वे मेरे लिये अकिंचन्य हैं, मेरे लिये किंचित् मात्र नहीं, मैं तो पूर्ण आनंद का नाथ हूँ, राग का अंश भी मेरा नहीं – ऐसी दृष्टि से धर्म-अर्थ-कामरूपी भाव की ममता छोड़कर ज्ञानस्वरूपी भगवान को ज्ञानपरिणति से जान। इसके अतिरिक्त तीन काल में आत्मज्ञान नहीं होगा।

अरे! अभी तो तेरा एक बीड़ी बिना भी नहीं चलता, चाय बिना नहीं चलता। इसप्रकार अपने को पामर बना रखा है, तो मैं स्वयं पूर्णानंद का नाथ हूँ, ऐसा विश्वास कैसे हो?

निज आत्मा स्वयं ही परमपद है, जिसकी महिमा वाणी द्वरा नहीं हो सकती, दिव्यध्वनि से भी नहीं कही जा सकती, ऐसे परमपदस्वरूप आत्मा को जाने बिना सब निरर्थक है। रागरहित वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान से जाना जाये – ऐसा आत्मा है। उसके बिना तप-त्याग आदि की लाखों क्रियायें करे तो भी आत्मा नहीं जाना जा सकता।

ज्ञान की निर्मल किरण बिना महाव्रत पाले, ब्रह्मचर्य पाले, अरे! आजीवन स्त्री का संग न करे तो भी उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। अतः यदि तू दुःख से छूटना चाहता है तो पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर आनंद के नाथ आत्मा का ज्ञान कर। इसके बिना कौआ, कुत्ता, कीड़ा आदि भव करते हुए मरा है। अनंत काल इसीप्रकार दुःख में ही व्यतीत हुआ।

प्रभु! तूने इतने दुःख भोगे हैं, जिनका माप नहीं, परंतु वे सब भूल गया है। चौरासी लाख अवतार की घानी में तू अनंत बार तिल के समान पिला है। आनंद के नाथ को तूने पुण्य-पाप की घानी में पेल दिया। यदि अब तू दुःख से छूटना चाहता हो, सिद्धसुख के झूले में झूलना चाहता हो, तो आत्मज्ञान करके निजपद को प्राप्त कर।

सारांश यह है कि पुण्य, पैसा और विषय की अभिलाषारूप धर्म-अर्थ-काम भाव को छोड़कर निर्मल ज्ञान परिणति द्वारा परमपद स्वरूप आत्मा को जान। ये भाव तथा महाव्रत के भावरूप धर्म 'पर' हैं, दुःख हैं; उनकी दृष्टि छोड़कर अंदर सुखामृत प्रभु की दृष्टि करने से सुखामृत की तृप्ति होती है। मैं तो आनंदकंद हूँ, ऐसी दृष्टिवाले समकिती को व्यवहारधर्म की अर्थात् पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि की भी कामना नहीं होती। और जिसे

व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है, उसे अर्थ और काम की इच्छा कैसे हो सकती है ? जिसे व्यवहारधर्म की कामना नहीं होती, उसे आत्मज्ञान प्राप्त होता है; अतः तुझे दुःख से मुक्त होना हो, मोक्ष की अभिलाषा हो तो व्यवहारधर्म की तथा अर्थ-काम की अभिलाषा छोड़ दे और तू अतीन्द्रिय आनंद का सागर है, ऐसा विश्वास कर।

भाई ! तुझे खबर नहीं तू कौन है और क्या कर रहा है ? तू तो अनंत आनंद, सुख और प्रभुता का पिंड है, वहाँ दृष्टि कर न !

व्यवहारधर्म की कामनारहित निर्ग्रंथ मुनिराज को अर्थ-काम की कामना कैसे हो ? वास्तव में तो चौथे गुणस्थान में राग की एकता टूट गयी है, दया-दान आदि के विकल्प की एकता छूटकर आत्मज्ञान हुआ है, उस अपेक्षा से इतनी निर्ग्रंथ दशा प्रकटी है। मुनि को तो तीन कषाय का अभाव हुआ है, मात्र एक महाव्रतादि का विकल्प शेष है, तो भी उस व्यवहार विकल्प की उन्हें इच्छा नहीं है। विकल्प आये बिना रहता नहीं, तो भी जहाँ उस व्यवहारधर्म की जिन्हें इच्छा नहीं, वहाँ अर्थ-काम की इच्छा कैसे हो ? अर्थात् जिन्हें व्यवहारधर्म का परिग्रह नहीं होता, उन्हें अर्थ और काम का परिग्रह कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता।

ज्ञानी तो केवल निजस्वरूप का ज्ञाता ही है और तुझे भी जो दुःख से छूटकर आत्मा प्राप्त करना हो तो दृष्टि में से धर्म-अर्थ-कामरूप भावों की अभिलाषा को छोड़कर परम पद का सेवन कर।

पावें णारउ तिरिउ जिउ पुण्णें अमरु वियाणु।
मिस्सें माण्णुस-गइ लहइ दोहि वि खइ णिवाण्णु॥

यह जीव पाप के उदय से नरक गति और तिर्यंच गति पाता है, पुण्य से देव होता है, पुण्य और पाप दोनों के मेल से मनुष्य गति को पाता है, और **पुण्य-पाप दोनों के ही नाश होने से मोक्ष को पाता है** -ऐसा जानो।

[परमात्मप्रकाश, अ० २, गाथा ६३]

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(६) अब भोक्तृत्व का वर्णन करते हैं :-

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से त्रिकाल शुद्धस्वभाव को देखने पर आत्मा में रागादि की उपाधि (भावकर्म आदि) नहीं होती, वह एकरूप चिदानंद ध्रुव है। वह स्वयं के आत्मा से उत्पन्न ऐसे सहज आनंद का ही भोक्ता है। भगवान आत्मा रागादि की उपाधि से शून्य है। ऐसा शुद्धद्रव्य त्रिकाल है, किंतु उसको देखनेवाला शुद्ध द्रव्यार्थिकनय तो मौजूदा है, वर्तमान है।

सम्यग्दृष्टि जीव अंतर्दृष्टि से स्वयं के आत्मा में से उत्पन्न हुए आनंद का भोगनेवाला है। सम्यग्दृष्टि साधक को पर्याय में आनंद का पूर्ण उपभोग नहीं, किंतु आंशिक आनंद का उपभोग है। पूर्ण आनंद के अभाव में शुभ-अशुभ कर्म के निमित्त से सुख-दुःख का भोक्ता अशुद्धनय से है। देखो, यह नय ज्ञानी के ही होता है। अज्ञानी तो एकांतपने में हर्ष-शोक का भोक्ता होता है, किंतु उसके नय होता नहीं। दूसरा, ज्ञानी ऐसा कहता है कि यह अज्ञानी जीव स्वयं के शुद्ध चिदानंद को छोड़कर अकेला पर की ओर झुकाव से हर्ष-शोक को ही भोगता है। ज्ञानी को तो त्रिकाल स्वभाव, उसमें ही अशुद्ध पर्याय दोनों का ज्ञान है। अज्ञानी को तो त्रिकाली शुद्धस्वभाव का भान (ख्याल) ही नहीं।

ज्ञानी के, स्वभाव के आनंद का आंशिक उपभोग है और आंशिक हर्ष-शोक का उपभोग है। दृष्टि अपेक्षा से तो ज्ञानी के स्वभाव की एकता की ही अधिकता होने से वह आनंद का ही भोक्ता है, वह हर्ष-शोक का भोक्ता नहीं। फिर भी अभी अस्थिरता से राग-द्वेष और हर्ष-शोक भी होते हैं, उसका वह अशुद्धनय से भोक्ता है। शुद्धनय से तो स्वभाव के आधार से आनंद का ही भोक्ता है।

इसप्रकार दोनों पक्ष का ज्ञान करना, वह प्रमाणज्ञान है। ज्ञानी या अज्ञानी कोई जीव परद्रव्य को भोगनेवाला तो है ही नहीं। ज्ञानी स्वयं के स्वभाव की दृष्टि से अतीन्द्रिय सहजानंद

का अनुभव करता है और जो अल्प हर्ष-शोक होता है, उसका अशुद्धनय से भोक्ता है। अज्ञानी अकेला हर्ष-शोक को ही भोगता है।

स्पष्ट ज्ञान का स्वभाव जैसा है, वैसा सब जानना है। विशेष जानना उसमें कुछ तकलीफ या उदासीनता नहीं है।

द्रव्य त्रिकाल है और पर्याय क्षणिक है। वहाँ त्रिकाली द्रव्य का आश्रय कर जितनी पर्याय अभेद हुई है, उतना तो आनंद का उपयोग है। उस आनंद का भोक्ता शुद्धनय से है, और अभी साधकदशा होने से अल्प शोक-हर्ष का वेदन भी है, उसका भोक्ता अशुद्धनय से है। आत्मा जड़ का भोक्ता नहीं है।

देखिये, यह शास्त्र नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने बनाया है, वे महान संत हैं। गोम्मटसार में वे कहते हैं कि अहो! मेरे अभयनन्दि गुरु के चरण-कमलों के प्रसाद से मैं इस संसार को तैर कर पार हो गया हूँ। देखिये, यह विनय का व्यवहार-कथन है। निश्चित ही स्वयं, स्वयं के भाव से संसार को तैरता है। यहाँ गुरु के बहुमान का विकल्प उठाने से निमित्त का कथन किया है। उसीप्रकार आत्मा व्यवहार से पर का भोक्ता है, ऐसा आगे कहेंगे। वहाँ भी निमित्त का कथन जानना। पर-सामग्री (आत्मा से भिन्न पर-पदार्थ) से जीव को सुख-दुःख होता नहीं, किंतु पर-सामग्री का लक्ष्य करके स्वयं-आप सुख-दुःख की कल्पना करता है, इसलिये उपचार से सामग्री को सुख-दुःख का कारण कहा जाता है, और उपचार से पर का भोक्ता कहा जाता है। वास्तविक रूप में जीव पर का भोक्ता नहीं है।

(७) अब संसारस्थ का वर्णन करते हैं :-

संसार-पर्याय भी जीव में होती है। संसार, वह एकसमय की विकारी पर्याय है, जीव ने उसको धारण कर रखी है। अर्थात् संसार वह भी जीव का पर्यायधर्म है। कर्म से संसार है, ऐसा नहीं है। जीव के जितने शुद्ध-अशुद्ध भाव हैं, उन सभी भावों को जीव धारण करता है।

शुद्ध निश्चयनय से जीव के स्वभाव में संसार है ही नहीं। शुद्ध निश्चयनय से तो जीव सदा आनंदस्वरूप एकरूप है, उसमें संसार नहीं है, किंतु अशुद्धनय से जीव की पर्याय में संसार है, इसलिये जीव संसारस्थ है। देखिये, इसे भी जानना चाहिये कि संसार पर में (अन्य पदार्थों में) नहीं है, किंतु जीव की पर्याय में है। पर्याय में संसार है, वह त्रिकाल में नहीं है। अशुद्धनय में

संसार है अर्थात् शुद्धनय से देखने पर जीव में संसार नहीं है। इसप्रकार नयों से वस्तु-स्वरूप को जाने तो संसार-पर्याय मानने की बुद्धि छूट जाती है और शुद्ध स्वभाव की दृष्टि होती है।

इस द्रव्यसंग्रह में तो प्रत्येक गाथा में नयों के अनुसार कथन होगा। शुद्धनय से देखें तो इस समय भी जीव का स्वभाव संसाररहित है। पर्याय में संसार है, यह अशुद्धनय का विषय है। ऐसे दोनों पहलुओं से ज्ञानी जीव स्वयं के आत्मा को जानता है। अरे! पर्याय में संसार होने पर भी मेरी आत्मा का स्वभाव नित्य आनंदरूप है, ऐसा धर्मी जानता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के परावर्तनरूप जो संसार है, उन पाँचों में जीव की स्वयं योग्यता है। कर्म के कारण परिभ्रमण होता है, ऐसा नहीं है। जीव जिस क्षेत्र में रहता है, वहाँ जीव स्वयं की योग्यता से ही रहा है, कर्म के कारण नहीं। पंच परावर्तन में घूमने या भ्रमण करने की योग्यता जीव की स्वयं की है और वह अशुद्धनय का विषय है। संसार 'पर' में नहीं किंतु अपनी पर्याय में है। जिसको सम्यग्दर्शन हुआ हो, उसको पर्याय का भी ज्ञान होता है।

श्रेणिक राजा को क्षायिक सम्यग्दर्शन था, तो भी नरक में गये। वहाँ कर्म के कारण गये, ऐसा कहना वह उपचारमात्र है। वास्तविक में तो अपनी वैसी योग्यता के कारण ही नरक में गये थे। देखिये, श्रेणिक नरक में गये, तब उनको ऐसा सम्यग्ज्ञान मौजूद था। ज्ञानी प्रमाणज्ञान के द्वारा संसार-असंसार दोनों को देखता है। स्वभावदृष्टि से देखने पर एक समय की पर्याय का संसार आत्मा में नहीं है।

(८) अब सिद्धत्व का वर्णन करते हैं :-

जीव की उस समय की योग्यता से सिद्धत्व पर्याय की प्राप्ति हुई है। शुद्धनय से आत्मा त्रिकाल अनंत ज्ञानादि स्वभाव का धारक होने से सिद्ध है, लेकिन संसार में कर्मोदय के निमित्त से स्वयं की योग्यता से असिद्धपना है, वह असिद्धपना (असिद्धत्व) व्यवहारनय का विषय है। देखिये, संसार-दशा के समय भी सिद्ध होने की शक्ति है और उसमें से सिद्ध की पर्याय प्रगट होती है। चार गति में घूमता है, वह भी उसकी वैसी योग्यता से है, और चार गति का नाश कर सिद्धदशा प्रगट करता है, वह भी स्वयं की योग्यता से प्रगट करता है।

(९) अब स्वभाव से ऊर्ध्वगमन का वर्णन करते हैं :-

देखिये, जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है। अर्थात् सिद्धदशा होते एक समय में ऊर्ध्वगमन

कर लोकाग्र (सिद्ध लोक) में जाता है। जैसे धुयें का स्वभाव ही ऊँचे जाना है, वैसे जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगमन करना है। सिद्ध भगवान को एक समय में जो ऊर्ध्वगमन होता है, वह विभाव नहीं है, लेकिन स्वभावगति है। चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय का व्यय होते ही संसार का व्यय हुआ और उसी समय सिद्धदशा का उत्पाद हुआ, वहाँ एक समय में ऊर्ध्वगमन होता है, वह स्वभाव से ही होता है। पूर्व प्रयोग वगैरह के कारण ऊर्ध्वगमन कहना, वह तो उपचार से है। लोकाग्र में स्थिर होता है, वह स्वयं के स्वभाव से ही होता है। धर्मास्तिकाय का ऊपर अभाव है, इसलिये ऊपर जाता नहीं, ऐसा कहना वह उपचार का कथन है।

कोई कहता है कि जैसे पक्षी का पंख टूट जाये, तब वह जहाँ हो वहीं पड़ा रहे, वैसे सिद्धभूमि (मुक्तिस्थान) पर मुक्त जीव रहता है, ऐसा नहीं है, यह बताने के लिये स्वभाव से ऊर्ध्वगमन होता है, ऐसा कहा है। सिद्ध भगवंत सादि अनंत काल लोकाग्र में रहते हैं और वहाँ स्वयं की स्वतंत्र सत्ता में अनंत आनंद का अनुभव करते हैं। शक्तिरूप से पूर्ण स्वभाव था, उसको पहिचान कर एकाग्र होते-होते पूर्ण एकाग्र हुये, वहाँ पूर्ण विकास रूप से परम पारिणामिकभाव की पूर्ण दशा प्रगट हुयी; वह मोक्ष है।

व्यवहार से कर्म के निमित्त से यानी वर्तमान चार गति में जाने की योग्यता से जीव ऊँचा, नीचा, आड़ा इसप्रकार संसार में गमन करता रहता है, वह विभावरूप गमन था। एकेन्द्रिय अवस्था में (निगोदिया जीव) सिद्ध भगवान के पास अनंत बार गया, वह ऊर्ध्वगमन स्वभाव नहीं, किंतु विकारी योग्यता है। निश्चयनय से केवलज्ञानादि अनंत गुणों की प्राप्तिस्वरूप मोक्ष है। उस दशा की प्राप्ति होते मोक्षगमन के समय स्वभाव से ऊर्ध्वगमन होता है। देखिये, कोई ऐसा कहता है कि सिद्ध भगवान को ऊर्ध्वगमन होता है, वह विभाव है, यह बात असत्य है। सिद्ध भगवान को मोक्षदशा होते ही एक समय में स्वभाव ऊर्ध्वगमन होता है।

इसप्रकार नौ अधिकारों में अनेक नयों से जीवद्रव्य का वर्णन किया। इसका नाम नयार्थ है। शब्दार्थ पहिले कहा था। शास्त्रों के अर्थ करने के पाँच भेद हैं। शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ। उनमें से शब्दार्थ और नयार्थ कहा।

कर्म से जीव ने भ्रमण किया, ऐसा कहा, वह तो व्यवहारनय का कथन है। इसप्रकार नयार्थ, जहाँ जैसा हो, वहाँ वैसा समझना चाहिये। ●●

नयों के कथन का मूल प्रयोजन

सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'प्रवचनसार' नामक ग्रंथराज पर अमृतचंद्राचार्य ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक गहन टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। ग्रंथराज का मर्म स्पष्ट करने के लिये उक्त टीका के अंत में परिशिष्ट के रूप में ४७ नयों का वर्णन है, जो प्रत्येक आत्मार्थी को जानने योग्य है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के अभिलाषी आत्मार्थियों को आत्मा की विविध योग्यतारूप अनंत धर्मों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी ने उक्त विषयों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवचन समय-समय पर दिये हैं। उन्हीं में से कुछ नयों के संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं। *[गतांक से आगे]*

अशुद्धनय :- आत्मद्रव्य अशुद्धनय से, घट और रामपात्र से विशिष्ट मिट्टीमात्र की भाँति, सोपाधि स्वभाववाला है।

मिट्टी में जो घड़ा, रामपात्र आदि अवस्था होती है, वह उसका स्थायी एकरूप भाव नहीं है, इसलिये उपाधि भाव है; उसी प्रकार साधक को निर्मलदशासहित जितने अंश में रागादि वर्तते हैं, वह उपाधि भाव है। अपनी अपूर्ण दशा का ज्ञान साधक को है, इसलिये वह ऐसा जानता है कि अशुद्धनय से आत्मद्रव्य सोपाधि स्वभाववाला है। ऐसा पर्याय का एक धर्म अपने को वर्तता है; उसे जानकर साधक वहाँ अटकता नहीं है कि ऐसा मेरा धर्म, इसलिये करने योग्य है, परंतु जाननेयोग्य है, ऐसा ज्ञान करता है। साधक जानता है कि जिस समय मैं अशुद्धनय से सोपाधि स्वभाववाला हूँ, उसी समय शुद्धनय से निरुपाधि स्वभाववाला भी हूँ। ऐसे-ऐसे अनंत धर्म एक ही समय में जिसने धारण कर रखे हैं, वैसा त्रिकाल शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा द्रव्य ही मैं हूँ - ऐसा साधक मानता है, अनुभवता है।

देखो, यह अशुद्धनय समझने योग्य है। कोई ऐसा मानता हो कि सम्यग्दृष्टि को दुःख का वेदन नहीं होता तो वह बात बिल्कुल असत्य है। सम्यग्दृष्टि जब तक पूर्ण वीतरागता को प्राप्त नहीं करता, तब तक साधकदशा में उसकी पर्याय की योग्यतारूप सोपाधि स्वभाववाला आत्मा है - ऐसा यहाँ कहा गया है।

वास्तव में तो यहाँ अशुद्धनय द्वारा ऐसा कहा है कि निर्मल पर्यायुक्त त्रिकाली चैतन्यमात्र आत्मा को जानना भी अशुद्धनय का विषय है, मलिन है, मेचक है। शुद्ध चैतन्यमात्र अद्वैत वस्तु को निर्मल पर्याययुक्त जानना, वह अशुद्धनय का विषय है। पर्याययुक्त वस्तु वह तो भेदरूप व्यवहारनय का विषय हो गया। समयसार की १४वीं गाथा में भी पर्यायसहित वस्तु मानना वह अभूतार्थ, असत्यार्थ है, ऐसा स्पष्ट समझाया है। अकेला अद्वैत अखंड सामान्यद्रव्य, वह शुद्धनय का विषय है, उसे विषय बनाकर उसका ध्यान करने से सम्यग्दर्शन होता है। सामान्यद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट होती है, उस पर्यायसहित यदि त्रिकाली ध्रुव को देखा जाये तो वह अशुद्धनय का विषय हो जाता है, इसलिये वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं रहता। इसप्रकार आचार्यदेव ने अशुद्धनय से सोपाधि स्वभाववाला कहकर भी शुद्ध चैतन्यद्रव्य का ही लक्ष्य कराया है।

आचार्यदेव की शैली तो देखो! एक-एक धर्म से आत्मा का वर्णन करें, या प्रमाणपूर्वक अनेक धर्मों से वर्णन करें, परंतु ले जाते हैं त्रिकाली सामान्यद्रव्य के सन्मुख ही। आचार्यदेव कहते हैं कि जो जीव त्रिकाली चैतन्यसामान्य का आश्रय करने चला है - पुरुषार्थ करता है, वह जीव नयों द्वारा एक-एक धर्म से आत्मा को देखे अथवा प्रमाणज्ञान द्वारा अनंत धर्मोंवाले आत्मा को देखे, वहाँ देखकर - ज्ञान करके भी त्रिकाली निज चैतन्य का ही अनुभव करता है, आश्रय करता है।

इसमें - वस्तु में जाननेयोग्य पर्याय का एक सोपाधि स्वभाववाला धर्म है, परंतु वह मात्र जाननेयोग्य है, आदरणीय नहीं है; आदरणीय तो त्रिकाल निरवधि एक अखंड ध्रुव चैतन्यद्रव्य ही है।

शुद्धनय :- आत्मद्रव्य शुद्धनय से, केवल मिट्टीमात्र की भाँति, निरुपाधि स्वभाववाला है।

द्रव्य को शुद्धनय से देखने पर, उसमें पर्याय की उपाधि नहीं है। सम्यग्ज्ञान की पर्याय में ज्ञानी शुद्धनय से ऐसा जानता है कि - 'मैं पर्यायरहित निरुपाधि आत्मद्रव्य हूँ।' जिसप्रकार घड़ा, रामपात्र आदि अवस्था के बिना केवल मिट्टी तो मिट्टीमात्र ही है; उसीप्रकार शुद्धनय से

देखने पर द्रव्य, निश्चयमोक्षमार्ग की भी पर्यायरहित है। निश्चयमोक्षमार्ग का विषय, निर्मल पर्याय का विषय, निरुपाधि स्वभाववाला ध्रुव आत्मा है।

नय का प्रारंभ करते हुए द्रव्यनय से, केवल पट की भाँति, भेदरहित आत्मा कहा और इस अंतिम नय में शुद्धनय से, केवल मिट्टीमात्र की भाँति, पर्याय की उपाधिरहित निरुपाधि स्वभाववाला आत्मा कहा है।

आत्मा को निर्मल पर्यायवाला मानना, वह शुद्धनय का विषय नहीं है। शुद्धनय का विषय तो ऐसा सामान्यद्रव्यस्वभाव है कि जिसमें शरीर, निमित्त, पर या औदयिकादि विकारी भाव तो नहीं हैं, परंतु क्षायिकभाव – निर्मल पर्याय भी उसमें नहीं है।

द्रव्यदृष्टि का विषयभूत त्रिकाली सामान्य निज शुद्धातमतत्त्व, वह क्षायिकादि चारों भावों से अगोचर है अर्थात् क्षायिक की पर्याय ध्रुव को जानती है परंतु क्षायिक के आश्रय से ध्रुवतत्त्व जानने में नहीं आता।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन का विषय क्या है ?

उत्तर- समयसार की १३वीं गाथा में कहा है कि - नवतत्त्वरूप पर्यायों में अन्वयरूप से विद्यमान भूतार्थ एकरूप सामान्य ध्रुव, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। पंचाध्यायी (अध्याय २) में भी कहा है कि भेदरूप नवतत्त्वों में सामान्यरूप से विद्यमान अर्थात् ध्रुवरूप से विद्यमान वह जीव का शुद्ध भूतार्थ स्वरूप है। इसप्रकार भेदरूप नवतत्त्वों से भिन्न शुद्ध जीव को बतलाकर उसे सम्यग्दर्शन का विषय अर्थात् ध्येयरूप बतलाया है।

जीव की श्रद्धापर्याय ध्येयभूत सामान्य ध्रुव द्रव्यस्वभाव की ओर झुकती है, तभी सम्यग्दर्शन एवं निर्विकल्प स्वानुभव होता है। उस समय दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि सर्व गुणों के परिणाम (पर्याय) स्वभाव की ओर झुकते हैं; मात्र श्रद्धाज्ञान के ही परिणाम झुकते हैं, ऐसा नहीं है, '.....वहाँ सर्व परिणाम उसरूप में एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं;.....' (पंडित टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी)

प्रश्न- ध्रुव स्वभाव के साथ निर्मल पर्याय को अभेद करके दृष्टि का विषय मानने में क्या आपत्ति है ?

उत्तर- ध्रुव द्रव्यस्वभाव के साथ निर्मल पर्याय को एकमेक करने से दृष्टि का विषय होता है - ऐसा माननेवाले व्यवहार से निश्चय होना माननेवालों की भाँति ही मिथ्यादृष्टि हैं; उनका जोर पर्याय पर है, ध्रुवस्वभाव पर नहीं है।

सम्यग्दर्शन के विषय में द्रव्य के साथ उत्पादरूप निर्मल पर्याय को साथ लेने से वह निश्चयनय का विषय न रहकर प्रमाण का विषय हो जाता है, और प्रमाण स्वयं

सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। निश्चयनय का विषय अभेद एकरूप द्रव्य है, प्रमाण की भाँति उभय-अंशग्राही नहीं है। यदि पर्याय को द्रव्य के साथ एकमेक किया जाये तो निश्चयनय का विषय जो त्रिकाली सामान्य है, वह नहीं रहता, परंतु प्रमाण का विषय हो जाने से दृष्टि में भूल है, विपरीतता है।

अनित्य, वह नित्य को जानता है; पर्याय, वह द्रव्य को जानती है; पर्यायरूप व्यवहार है, वह निश्चयरूप ध्रुव द्रव्य को जानता है; भेद है, वह अभेद द्रव्य को जानता है; पर्याय, वह जाननेवाली अर्थात् विषयी है और त्रिकाली ध्रुवद्रव्य, वह जाननेवाली पर्याय का विषय है। यदि द्रव्य के साथ निर्मल पर्याय को मिलाकर निश्चयनय का विषय कहा जाये तो विषय करनेवाली पर्याय तो कोई भिन्न नहीं रही। अतः पर्याय को विषयकर्ता के रूप में द्रव्य से भिन्न लिया जाये, तभी विषय-विषयी दो भाव सिद्ध हो सकते हैं; इससे अन्यथा मानने से महाविपरीतता होती है।

श्रुतज्ञान की पर्याय, वह प्रमाणज्ञान है। प्रमाणज्ञान स्वयं पर्याय होने से व्यवहार है। वीतरागी पर्याय स्वयं व्यवहार है; परंतु उसने त्रिकाली द्रव्यरूप निश्चय का आश्रय लिया होने से उस निर्मल पर्याय को निश्चयनय कहा है; परंतु वह पर्याय होने से व्यवहार ही है।

शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। पर का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर, पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली द्रव्य का लक्ष्य करे, तब वीतरागता प्रगट होती है। यदि त्रिकाली द्रव्यरूप ध्येय में पर्याय को साथ ले तो वह बात नहीं रहती।

प्रश्न- इसका कोई शास्त्रीय आधार भी है क्या ?

उत्तर- समयसार की ४९वीं गाथा की टीका में त्रिकाली सामान्य ध्रुव द्रव्य से निर्मल पर्याय को भिन्न बतलाते हुए कहा है कि - व्यक्तपना तथा अव्यक्तपना एकमेक - मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह व्यक्तपने को स्पर्श नहीं करता, इसलिये अव्यक्त है। इस 'अव्यक्त' विशेषण से त्रिकाली ध्रुव द्रव्य कहा है, उसके आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट होती है, तथापि वह त्रिकाली ध्रुवद्रव्य व्यक्त ऐसी निर्मल पर्याय को स्पर्श नहीं करता। इसी अपेक्षा से त्रिकाली ध्रुव द्रव्य से निर्मल पर्याय को भिन्न कहा है।

प्रवचनसार गाथा १७२ में अलिंगग्रहण के १८वें बोल में कहा है कि – आत्मा में अनंत गुण होने पर भी उन गुणों के भेद को आत्मा स्पर्श नहीं करता, क्योंकि गुण के भेद को लक्ष्य में लेने से विकल्प उठता है, निर्विकल्पता नहीं होती। शुद्ध निश्चयनय से एकरूप अभेद सामान्य ध्रुवद्रव्य को लक्ष्य में लेने से विकल्प टूटकर निर्विकल्पता होती है। इसलिये आत्मा गुणों के भेद को स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहा है। और १९वें बोल में आत्मा पर्याय के भेद को स्पर्श नहीं करता अर्थात् जिसप्रकार ध्रुव में गुण हैं और उन्हें स्पर्श नहीं करता, उसीप्रकार ध्रुव में पर्यायें हैं और उन्हें स्पर्श नहीं करता – ऐसा नहीं कहना है, परंतु ध्रुव सामान्य से पर्याय भिन्न ही है – ऐसे पर्याय के भेद को आत्मा स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहकर निश्चयनय के विषय में अकेला सामान्यद्रव्य ही आता है, ऐसा बतलाया है।

प्रश्न– क्या शास्त्रों का अर्थ भी अनेक तरह से किया जाता है ?

उत्तर– अक्षरार्थ, भावार्थ आदि पाँच प्रकार से शास्त्रों का अर्थ करने को आचार्यदेव ने कहा है।

जैसे – ज्ञानावरणी कर्म से ज्ञान रुकता है, यह तो अक्षरार्थ हुआ; ज्ञानावरणी कर्म से ज्ञान नहीं रुकता परंतु अपने ही कारण ज्ञान अल्प (हीन) हुआ है, वह भावार्थ हुआ। पर के कारण ज्ञान अल्प हुआ है, ऐसा माननेवाले की तो दृष्टि ही मिथ्या है, परंतु ज्ञान अपने ही कारण हीन है, ऐसा जानना वह सत्य है। ऐसा जानकर भी हीन पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ध्रुव चैतन्यसामान्य का लक्ष्य करना, वह भावार्थ है। यही भावार्थ जानने का प्रयोजन है।

नियमसार में चार भावों से आत्मा को अगोचर कहा है। अर्थात् क्षायिकभाव से आत्मा जानने में नहीं आता, वह अक्षरार्थ है। वह अक्षरार्थ भी भावार्थ से ही सफल है। उसका भावार्थ यह है कि क्षायिकभाव के आश्रय से आत्मा ज्ञात नहीं होता, इसलिये आश्रय की अपेक्षा से क्षायिकभाव से अगोचर कहा है। आत्मा को जाननेवाली तो निर्मल पर्याय स्वयं ही है, तथापि निर्मल पर्याय के आश्रय से त्रिकाली आत्मा जानने में नहीं आता।

नियमसार (भक्ति अधिकार) में दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम का भजन, वह भक्ति है - ऐसा कहा है, वह व्यवहारनय से कहा है, परंतु उसका भावार्थ धर्मी जीव ध्रुवात्मा की ही भक्ति-सेवा-उपासना करता है - ऐसा समझना। समयसार की १६वीं गाथा में कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा सेवन करनेयोग्य है, वह व्यवहार से समझाया है; परमार्थ से तो एकरूप ध्रुवआत्मा का ही सेवन करना है। व्यवहार से समझाया जाता है, तथापि समझाने और समझनेवाले को व्यवहार में स्थित नहीं रहना है। समयार की ८वीं गाथा की टीका में भी ऐसा ही कहा है कि '.....व्यवहारनय भी म्लेच्छ भाषा के स्थान में होने के कारण परमार्थ का प्रतिपादक (कहनेवाला) होने से व्यवहारनय स्थापन करनेयोग्य है; तथा ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं होना - इस वचन से वह (व्यवहारनय) अनुसरण करनेयोग्य नहीं है।' जहाँ-जहाँ शुद्ध पर्याय की सेवा करने को, ध्यान करने को कहा है, वहाँ-वहाँ उसे समझाने की एक प्रकार की शैली के कथन हैं; निर्मल पर्याय प्रकट होती है - उस अपेक्षा से कहा है - ऐसा समझना।

समयसार की ६वीं गाथा की टीका में कहा है कि - आत्मा अन्य द्रव्यभावों से भिन्नरूप उपासना किये जाने से 'शुद्ध' कहलाता है; वहाँ अन्य द्रव्य से लक्ष्य छूटता है और स्वद्रव्य पर लक्ष्य जाता है, तब पर्याय भी गौण हो जाती है और अकेले ध्रुव द्रव्यस्वभाव पर लक्ष्य जाता है; वह द्रव्य की सेवा कही जाती है।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ – पूज्य गुरुदेवश्री सुख-शांति में विराज रहे हैं। प्रातः परमात्मप्रकाश और दोपहर समयसार पर मार्मिक प्रवचन हो रहे हैं। पूज्य गुरुदेवश्री का विहार का कार्यक्रम बन रहा है। बनते ही यथाशीघ्र प्रकाशित किया जायेगा।

महत्त्वपूर्ण निर्णय :- श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टियों की मीटिंग दिनांक ११-१२-७६ को श्री सीमन्धर जिनालय, मुम्बादेवी रोड, बम्बई में हुई। जिसमें तीर्थों एवं ग्रंथ-भंडारों का सर्वेक्षण संबंधी कार्यक्रम निश्चित किया गया। तीर्थों के सर्वेक्षण के लिये बनायी गयी प्रश्नावली को अंतिमरूप दिया गया तथा अनुपलब्ध साहित्य की शोध-खोज, उपलब्ध साहित्य का प्रकाशन, विक्रय आदि की व्यवस्था एवं हस्तलिखित ग्रंथ-भंडारों की सूचियाँ बनाने आदि का कार्य करने का निश्चय किया गया है। तदर्थ आवश्यक कार्यवाही हेतु समितियाँ गठित कर दी गईं व उनके लिये बजट का प्रावधान किया गया।

— मंत्री, श्री कुन्दकुन्द कहान दिग० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ

भिण्ड :- यहाँ १ दिसम्बर १९७६ से दो नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ आरंभ हुईं। श्री आदिनाथ दिगम्बर जिन मंदिर में श्री आदिनाथ वीतराग-विज्ञान पाठशाला एवं श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिन मंदिर में श्री नेमिनाथ वीतराग-विज्ञान पाठशाला स्थापित की गयी। जिसमें पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित प्रशिक्षण-शिविर में प्रशिक्षित अध्यापिका श्रीमती सुशीला जैन की नियुक्ति की गयी। दोनों पाठशालाएँ व्यवस्थित चल रही हैं।

—जयंतीप्रसाद जैन, अध्यक्ष

पिपरई :- १ दिसम्बर १९७६ की मंगलमय प्रभात बेला में यहाँ श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला का शुभारंभ समारोह के साथ संपन्न हुआ। जिसमें अभी सतीशचंदजी जैन एम.ए. अपनी सेवाएँ निःशुल्क दे रहे हैं।

—लालजीराम, विदिशा

झांसी-ललितपुर जिला वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की रिपोर्ट :-

ललितपुर से समिति के मंत्री श्री अभयकुमारजी टडैया लिखते हैं कि समिति के प्रयास

से अब तक बांसी, जखौरा, लागोंन, बानपुर, कुम्हेरी, झांसी, चिरगाँव, नैकौरा में एक-एक तथा ललितपुर में छह:, इसप्रकार कुल १४ नयी वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खुली हैं। ये सभी पाठशालाएँ व्यवस्थित रूप से चल रही हैं। समिति के मंत्री, अध्यक्ष एवं सदस्यगुण इन पाठशालाओं के निरीक्षण करने के लिये गाँव-गाँव जाते हैं और बालकों तथा समाज को प्रेरणा देकर उत्साह बढ़ाते हैं।

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट:-

समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविन्दप्रसादजी खडेरीवालों ने केकड़ी, कोटा, पिड़ावा, बारां, बीना, खडेरी, बण्डा, कदवां, बरा, बरायठा, मालथोंन, सागर, रहली, मोहली, खमरिया, सहजपुर, तेंदूडावर, कुसमी, केवलारी कलां, केसली, करेली, टड़ा आदि स्थानों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया। लगभग सभी पाठशालाएँ व्यवस्थित ढंग से चल रही हैं। कुछेक पाठशालाएँ अव्यवस्थित पायीं गयीं, उन्हें उचित सुझाव व प्रेरणा देकर व्यवस्थित किया गया।

उक्त स्थानों के अलावा वे आस-पास के गाँवों में भी गये और वहाँ चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया। जिन गाँवों में पाठशालाएँ बंद थीं, उन्हें प्रेरणा देकर पुन: प्रारंभ करायीं। पंडितजी का निरीक्षण दौरा अभी चालू है। वे पूर्व सूचना के बिना भी किसी भी पाठशाला के निरीक्षण हेतु पहुँच सकते हैं। — **मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति**

बम्बई :- श्री दिगम्बर जैन पंचायत (तेरापंथ) बम्बई के तत्त्वावधान में श्री चंद्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर भूलेश्वर का पंच दिवसीय वार्षिक समारोह एवं रथयात्रा-महोत्सव दिनांक ७-१२-७६ से ११-१२-७६ तक बड़े ही हर्ष एवं उल्लास के साथ संपन्न हुआ। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के मार्मिक प्रवचन प्रात: समयसार की ३८वीं गाथा पर तथा रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार पर होते थे। आपने जिनवाणी के मर्म को बड़ी ही सरल भाषा में अनेक रोचक उदाहरणों के साथ समझाया जिससे लोगों में अभूतपूर्व धार्मिक जागृति हुई।

रथयात्रा के समय दो दिन के लिये श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा तथा श्री पंडित उत्तमचंदजी सिवनी भी पधारे थे। डॉ. भारिल्लजी ने बड़े ही

रोचक और सुंदर शैली में 'जीव की अहंकार और ममकारमय प्रवृत्ति' का विद्वतापूर्ण विश्लेषण किया। पंडित उत्तमचंदजी ने 'जीव बंधन में क्यों-वह मुक्त कैसे हो?' विषय पर अपने विचार प्रकट किये।

सभी विद्वानों के प्रवचनों से श्रोता काफी प्रभावित हुए। **— मूलचंद पाटनी, संयोजक**

रतलाम :- श्री पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। १९ दिसम्बर १९७६ को श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर में प्रातः, दोपहर एवं रात्रि को आपके बड़े ही मार्मिक प्रवचन हुए। आपने श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट संबंधी बातों पर भी प्रकाश डाला। तत्त्वप्रेमी बंधुओं ने अधिक से अधिक सहयोग देने का वचन दिया।

इसके पूर्व १२ दिसम्बर १९७६ को श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा संचालित ग्रीष्मकालीन परीक्षा १९७६ में उत्तीर्ण होनेवाले श्री संभवनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला के छात्र-छात्राओं को भी आनंदकुमारजी अजमेरा द्वारा पारितोषिक एवं प्रमाणपत्र वितरित किये गये। इस पाठशाला में उक्त परीक्षाबोर्ड का पाठ्यक्रम गत सात वर्षों से चल रहा है। **— मोहनलाल छाबड़ा**

उज्जैन :- आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता के पधारने से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। उनके मार्मिक प्रवचनों का लाभ तो मिला ही, साथ ही तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को बहुत अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। यहाँ से वे बड़नगर तथा महीदपुर गये। वहाँ भी उनके प्रवचनों का लाभ एवं तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। **—प्रदीप झांझरी, उज्जैन**

कोटा :- जैन दर्शन शिक्षण-शिविर का आयोजन दिनांक २६-११-७६ से ३-१२-७६ तक सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहर निवासी पधारे थे। वे प्रतिदिन तीन बार कक्षाऐं लेते थे, साथ में 'युगलजी' के व्याख्यान भी होते थे। कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा। समाज को खूब लाभ मिला। **—लालचंद जैन, मंत्री, वीर संघ, कोटा**

छिंदवाड़ा :- २८ एवं २९ नवम्बर १९७६ को संत तारण-तरण जयंत समारोह का आयोजन हुआ। इस अवसर पर श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा एवं श्री पंडित विनयकुमारजी पथिक मथुरा पधारे। श्रीमती कुसुम पाटनी के निर्देशन में रात्रि सभा के पश्चात् विभिन्न

सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। **—सचिव, तारण-तरण जयंती समारोह**

प्रतापगढ़ :- १२ दिसम्बर १९७६ को श्री कन्नूभाई दाहौद वालों के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आप यहाँ दो दिन रहे। समाज को आपके प्रवचनों का दोनों समय लाभ प्राप्त हुआ। आपकी प्रवचन-शैली एवं भक्ति की सभी ने सराहना की।

— अध्यक्ष, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

भिलाई :- दिनांक २५-१०-७६ से २-११-७६ तक स्थानीय जैन मंदिर में श्री सिद्धचक्र मंडल विधान सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्र-छात्राओं द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। विद्वानों के आध्यात्मिक प्रवचनों से महती धर्म प्रभावना हुई। **—शीतलचंद जैन, केंद्राध्यक्ष, वीतराग विज्ञान पाठशाला**

सूचना :- श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड, जयपुर से संबंधित समस्त केन्द्रों को रोल नंबर, परीक्षा का कार्यक्रम तथा परीक्षा से संबंधित आवश्यक सामग्री भेजी जा चुकी है। जिन्हें न मिली हो वे तत्काल लिखें। प्रश्न-पत्र इसी माह में भेजे जा रहे हैं। जिन्हें २२ जनवरी तक न मिलें वे कार्यालय को तुरंत सूचित करें। **— मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

आवश्यकता है :- एक ऐसे अध्यापक की जो बालकों को वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की पाठ्यपुस्तकें पढ़ा सके, साथ ही प्रवचन भी कर सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार। **—चौधरी गोटीलाल जैन,** अध्यक्ष, दिगम्बर जैन शिक्षा मंदिर, पिपरई गाँव (गुना) म.प्र.

नये प्रकाशन :-

परमपूज्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत महान ग्रंथराज

अष्टपाहुड़

मूल्य : प्लास्टिक कवर सहित १०) रुपया सादा ९) रुपया

वीतराग-विज्ञान भाग ३

[छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन]

मूल्य १) रुपया

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

बम्बई से श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल जवेरी, प्रमुख, स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ लिखते हैं:-

मैंने हिन्दी आत्मधर्म के अंकों में छपे हुए लेख पढ़े। पढ़कर मैं प्रभावित हुआ। ये 'इंटरव्यू' बड़े प्रशंसनीय लेख हैं। जो सोनगढ़ के बारे में अनेक भ्रांतियाँ फैला रहे हैं, उनको यथोचित जवाब इन लेखों में आ गया है। आशा है आगे भ्रम फैलानेवाले रुकेंगे।

अलीगंज (उ.प्र.) से श्री वैद्य गंभीरचंदजी जैन लिखते हैं :-

मैं पिछले ३१ वर्षों से आत्मधर्म हिन्दी व गुजराती का नियमित पाठक हूँ, जब यह माननीय श्री रामजीभाई के संपादकत्व में निकलता था। अब श्री डॉ. भारिल्लजी के संपादकत्व में एक अनूठी, नवीन साज-सज्जा, लेखन शैली एवं महताकर्षण का समावेश तो इसमें हुआ ही है; साथ ही उसी पुराने अध्यात्म के गूढ़ प्रवाह को, जो श्रीरामजीभाई के संपादकत्व में था, पुनः प्रवाहित करके श्री भारिल्लजी ने आत्मरसिक मुमुक्षुओं पर विशेष उपकार किया है। 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' संबंधी इंटरव्यू ने भोले जीवों में उत्पन्न किये गये भ्रमरूपी अंधकार को विनाश करने में सूर्य का काम किया है।

इंदौर होल्कर कालेज से श्री कमलकुमारजी जैन लिखते हैं :-

आपके संपादकत्व में आत्मधर्म को नए रूप में प्राप्तकर अतीव प्रसन्नता होती है। पूज्य स्वामीजी से 'इंटरव्यू' एक साहसिक कदम है। आशा है जैन समाज में पूज्य श्री स्वामीजी के बारे में अन्य-अन्य भ्रांतियों को ऐसे-ऐसे इंटरव्यूज प्रकाशित कर दूर करने में सहायक होंगे। पृष्ठ एक पर आध्यात्मिक पद देखकर बहुत अच्छा लगता है।

फतेपुर मोटा (गुजरात) से श्री चंदूभाई के. मेहता लिखते हैं :-

हिन्दी आत्मधर्म में संपादकीय लेख दशधर्म पर आ रहे हैं, ये बहुत अपूर्व हैं। सम्यग्ज्ञान

दीपिका के बारे में समाज में बहुत भ्रम फैला हुआ था। आपके दूसरे इंटरव्यू से सब भ्रम दूर हो गया। आत्मधर्म की एक विशेषता यह है कि उसमें मात्र तत्त्वविचार, आत्मानुभूति की महिमा, मोक्षमार्ग का स्वरूप और प्रयोजनभूत तत्त्वों के अलावा दूसरी बात देखने में ही नहीं आती है।

प्रतापगढ़ (राजस्थान) से श्री सज्जनलाल साबरिया लिखते हैं :-

नवम्बर ७६ के आत्मधर्म में 'एक और इंटरव्यू कानजीस्वामी से' बड़ा ही रोचक एवं मार्मिक था। इस इंटरव्यू से समाज में व्याप्त बहुत सी भ्रांतियाँ दूर हो गयीं। लोगों में जो गलत धारणाएँ फैलती जा रही थीं, इस इंटरव्यू ने निकाल दी हैं। समय-समय पर ऐसे इंटरव्यू अवश्य दिया करें।

उदयपुर (राजस्थान) से श्री रवीन्द्रजी गंगवाल लिखते हैं :-

आत्मधर्म के लिये हर महीने ८-१० तारीख को पोस्टमैन का इंतजार रहता है। इतनी सरल भाषा, बड़े अक्षर व छपाई और उसमें आधुनिक लेख। चैतन्य चमत्कार, उत्तमक्षमा, ज्ञान और वैराग्य, ज्ञान-गोष्ठी सम्यग्ज्ञान दीपिका पर पूज्य गुरुदेव का इंटरव्यू - इन लेखों ने तो जादू ही कर दिया है।

रतलाम से श्री सुगनचंदजी पाटनी, एम.ए., एलएल.बी., नगरपालिका रेवेन्यू आफीसर लिखते हैं:-

जब से आत्मधर्म जयपुर से प्रकाशित हुआ, आत्मधर्म पत्रिका समयानुकूल होकर जैन समाज की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका हो गयी है। सोनगढ़ साहित्य व पूज्य स्वामीजी के बारे में जो भ्रम फैलाया गया था, वह प्रथम इंटरव्यू 'चैतन्य चमत्कार' से व दूसरा 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' से निर्मूल हो गया।

ताजे अंक में जो मार्दव के संबंध में संपादकीय लेख है, वह तो पढ़ते ही बनता है। दो बार पढ़ो, तीन बार पढ़ो, मन हटता नहीं है। इसीप्रकार के इंटरव्यू व ऐसे संपादकीय लेखों से मन में शांति स्थापित होगी।

नोट :- सम्यग्ज्ञान दीपिका के संबंध में पूज्य गुरुदेव से लिये गये इंटरव्यू के संबंध में अनेकों प्रशंसात्मक पत्र आ रहे हैं। उन सबको प्रकाशित करना संभव नहीं है, अत: क्षमा करें।

प्रबंध संपादक की कमल से

(१) अनेक भाई मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में पत्र व्यवहार करते हैं, जो हम समझ नहीं पाते। अतः पत्र व्यवहार कृपया हिन्दी में ही करें।

(२) कई भाईयों की शिकायत रहती है कि हमें १ या २ अंक नहीं मिले हैं व बाकी सब अंक मिल गये हैं। हमने सब पते छपा लिये हैं तथा छपे हुए पतों के सभी अंक ५ या ६ तारीख को निश्चितरूप से यहाँ से भेज दिये जाते हैं। अतः अंक यहाँ से न भेजे जाने का कोई कारण नहीं है। बीच में ही कहीं गड़बड़ होती है, उसके लिये हम कुछ नहीं कर सकते। पत्र आने पर यदि हमारे पास वह अंक उपलब्ध होता है तो उन्हें अवश्य भेज देते हैं।

(३) कार्यालय में निम्न बंधुओं के आत्मधर्म वापस आ रहे हैं, संभवतः इनका पता गलत लिखा है। अतः जो भाई इनसे परिचित हों वे कृपया पूरा सही पता लिखकर भेज दें ताकि इन्हें आत्मधर्म भेजे जा सकें:-

2032. श्री शांतीस्वरूप जैन, जैन कटरा, फिरोजाबाद, जिला आगरा (यू.पी.)

4639. श्री अमरचंद रांवका, नवेरंग नगर, बैंक कालोनी, छावनी रोड, इंदौर (म.प्र.)

4223. श्री सुरेन्द्रनाथ पिनाहटवाले, भावनगर (गुजरात)/फिरोजाबाद (उ.प्र.)

2079. मै. जैन रेडिया एण्ड इलेक्ट्रिकल्स, सदर बाजार, मण्डला, देहली

2905. मै. कुमार स्टोर्स, शहीद पार्क, फ्री गंज, उज्जैन (म.प्र.)

4251. श्री प्रेमचंद राकेशकुमार जैन, संगीयान मौहल्ला, सहारनपुर (उ.प्र.)

2957. श्री सुमनचंद जैन द्वारा श्री दौलतराय श्रीवास्तव के मकान में, कोटा वाझम, भोपाल

3070. श्री नंदलाल भयाचंद जैन, किराना मर्चेंट्स, माया के नौहर के पास, सीमेंट रोड, उदयपुर

2192. श्री पदमचंद हल्दिया, 4722, हाउसिंग बोर्ड, नाहरी का नाका, जयपुर - 6

4198. Shri M. K. Jain, 9-D, Govind Nagar, Dehradun (U.P.)

2009. Shri Jive Chand Jain, Seer Jain Salihayeer Service, Green Park, New Delhi.

3198. Shri Sumati Chand Kacharuns Sampat, In front of Primary School, At & Po. Tasal, Dist. Amrawati (Maharastra)

4858. Shri Inderchand Jain C/o Shri Krishanlal Phoolchand, 19, Dewan Surappa Lane, Chickpet, Banglore 560053

3259. Shri Chandra Bhan Jain C/o Tikodimal Chandramal, 6, Khin Rawan Rade, Uttar Pada, Hugali (West Bengal)

काल की ओर नहीं, अपनी ओर देख....

सांयकालीन चर्चा के समय जब वर्तमान वातावरण की बात चली तो गुरुदेव श्री अत्यंत गंभीरतापूर्वक बोले :-

''काल की ओर क्या देखते हो, अपनी ओर देखो। अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण तो बनता-बिगड़ता ही रहता है, उसका ही चिंतवन करोगे तो आकुलता ही उत्पन्न होनेवाली है। अच्छे कार्यों में तो विघ्न आते ही हैं। पंडित टोडरमलजी के समय में भी, उनकी आलोचना करनेवाले कम न थे। उन्हें तो अपने प्राण भी गंवाने पड़े। आज का वातावरण कैसा भी हो, पंडित टोडरमलजी जैसा तो नहीं। जगत पर से दृष्टि हटाकर अपनी ओर देखो। वहाँ ही अपूर्व शांति मिलेगी।

आयु थोड़ी है, इसमें कहाँ-कहाँ उलझोगे। महादुर्लभ मनुष्य भव मिला है, तो उसमें अपना भव-भ्रमण मिटे, ऐसा काम कर लेना चाहिये। यही एक मात्र सार है, मनुष्य जीवन में करने योग्य कार्य है।''

संपादक

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे		रु० पैसे
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
प्रवचनसार	१२-००	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
पंचास्तिकाय	७-५०	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
नियमसार	५-५०	मैं कौन हूँ?	१-००
अष्टपाहुड़	१०-००	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार नाटक	७-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
आत्मावलोकन	३-००	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००	अपने को पहचानिए	०-५०
छहढाला (सचित्र)	१-५०	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
द्रव्यसंग्रह	१-२०	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग २	०-४०	सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००	आगम पथ : कानजीस्वामी विशेषांक	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	परमात्म पूजा संग्रह	२-००
परमात्म पूजा संग्रह	२-००		
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००		

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**